पां डु लि पि

[देवेश ठाकुर के व्यक्तित्व-कृतित्व का मूल्यांकन]

सम्पादक :
डॉ० ब्रह्मदेव मिश्र
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय,
गोवा.

© संकल्प प्रकाशन, बम्बई

प्रथम संस्करण : जून, 1993

प्रकाशक :

संकल्प प्रकाशन

ए—34, बिल्वकुंज, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग,
मुलुंड [पश्चिम], बम्बई—400082.

मुद्रक : देवलोक प्रेस, सूरज कुण्ड रोड, मेरठ।
फोन : 77231

मूल्य : 180 रुपये मात्र

'PANDULIPI' (CRITICISM) EDITED by Dr. Brahmadev Mishra.
Price : Rs. 180/-only

□ डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र

23

समसामयिक नागरी स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की यथार्थ प्रस्तुति : 'अन्ततः'

यह संयोग ही है कि अन्ततः' देवेश ठाकुर का अब तक प्रकाशित अन्तिम उपन्यास है जिसमें उन्होंने महानगरीय जीवन जी रहे व्यक्तियों के स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, अन्तर्द्वन्द्वों और प्रेम-विवाह की असफलताओं का बहुत ही कलात्मक ढंग से चित्रण किया है। उपन्यास की नायिका वसुधा अपने भीतर चलने वाले विभिन्न अन्तर्द्वन्द्वों से मुक्ति पाने में 'अन्ततः' सफल हो जाती है। निश्चय ही इसे देवेशजी के अन्तर्द्वन्द्वों की परिणति नहीं माना जा सकता, पर यह अपेक्षा तो की ही जा सकती है कि अब वे वसुधा जैसी मॉडर्न नारी के मनोविज्ञान के अन्य पहलुओं पर भी विचार करेंगे जिसके दायरे में पुरुष और नारी को जोड़कर देखने का जीवन-समीकरण कभी-कभी सरलीकरण का पर्याय बनकर उभरता है। वसुधा को पुरुष चाहिए ही और पंकज पसरीचा को एक अच्छी पत्नी क्योंकि दोनों अपने-अपने अतीत की कचोट के शिकार हैं। सारे अन्तर्विरोधों के बावजूद 'अन्ततः' तो उन्हें मिलना ही था। उनका मिलना कितना तुष्टिदायक रहा होगा—यह तो आलोच्य उपन्यास में शामिल नहीं है, पर मन और शरीर के समीकरण से यह संकेत अवश्य दे दिया गया है कि सब कुछ अच्छा ही हुआ होगा। उपयोगितावाद से परिचालित वसुधा-पसरीचा समीकरण अपनी तमाम सम्भावनाओं के साथ नारी-पुरुष समता का जो हल पेश करता है वह सेक्स-सम्बन्धों के एकायामी मनोविज्ञान तक सीमित हो जाता है।

यह सही है कि आधुनिकता के साथ अपनी भोगवादी प्रवृत्ति की स्वच्छन्दता स्वार्थ पूर्ति तक सीमित होकर जिस तरह की विसंगतियों का अम्बार लगा रही है, उसके चलते मानवीय रिश्तों के सामने प्रश्न-चिन्ह लग गया है और उनसे बचना एक बेहद मुश्किल काम है। लेकिन इस रिश्ते में भोगना नारी को ही पड़ता है—अनचाहे भी, क्योंकि उसे पुरुष की गर्म बाहों का सहारा चाहिए; एकाकी वह जी नहीं सकती; भले ही वह आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हो। पुरुष के साहचर्य की यह अपेक्षा एक

अनिवार्यता बनकर उसे पुरुष की शर्तों पर जीने को बाध्य करती है। और जहाँ यह बाध्यता नहीं है, वहाँ भी समर्पण-भाव भले ही वह परस्पर समर्पण भाव से हो, प्रधान है। जहाँ समर्पण में कमी आई, रिश्ता गड़बड़ा जाएगा। यानी कहीं न कहीं बन्धन की स्वीकृति आवश्यक है। देवेश जी का यह दर्शन अपनी सारी मूल्यवत्ता के बावजूद नारी को उसकी शर्त पर जीने का वह दर्शन नहीं दे पाता जो परम्परागत दर्शन से हटकर हो। पर इसी कारण उपन्यास असफल या कमजोर नहीं कहा जा सकता।

जैसा संकेतित है, उपन्यास की कहानी एक अति संवेदनशील और आधुनिक मध्यवर्गीय महिला के जीवन पर आधारित है, जिसे अनेक मानसिक यातनाओं से गुजरना पड़ता है। शादी के चार वर्ष बाद ही उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है क्योंकि अपने व्यवसाय में अतुल इस कदर व्यस्त हो जाता है कि पत्नी वसुधा के लिए उसके पास समय ही नहीं बचता। यहाँ तक कि गर्भवती वसुधा को छोड़कर वह विदेश चला जाता है और वापस लौटकर भी नहीं आता। पति का घर छोड़कर उसे वर्किंग वीमन्स हॉस्टल में रहना पड़ता है। इस मुसीबत की घड़ी में कार्यालय में कार्यरत पूर्व परिचित राघवन से वसुधा कुछ अधिक ही जुड़ जाती है। राघवन हर तरह से उसकी सहायता करता है और वसुधा की कमजोरी का फायदा भी उठाता है। इसी बीच वसुधा का परिचय इन्दिरा प्रैस के सम्पादक पंकज पसरीचा से होता है और वह उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा और चिन्तन से प्रभावित होती है। पत्नी पद्मा से अलग हो जाने के कारण उन्हें ऐसा आघात लगा है कि पद, मान, प्रतिष्ठा और अनेक सुविधाओं के होते हुए भी उन्हें जीवन में खालीपन की एक कचोट हमेशा सालती रहती है। इसी गहरे खालीपन को भरने के लिए एक दिन उन्होंने वसुधा से मित्र बनने का प्रस्ताव बड़ी ही संयत और स्पष्ट भाषा में रख दिया। परस्पर आकर्षण से दोनों हमपथिक परस्पर मिलने-जुलने लगे। कहना न होगा कि वसुधा और पंकज के मेल-मिलाप से राघवन को ठेस लगी जो उसके स्वार्थ पर कुठाराघात था। वसुधा की सहायता से नया फ्लैट लेने की बात कहना और साथ ही उसके संवेदनशील सहज यौवन का भी आनन्द लेना उसका शगल था। राघयन के मनोभाव को वसुधा न जानती हो, ऐसा नहीं है। विवशता और अपनी कमजोरी में ही वह उसका संग-साथ निभाती चलती है। लेकिन पसरीचा से सम्पर्क बढ़ने के बाद उसमें कुछ साहस आता है और थोड़ी-बहुत आर्थिक हानि सहकर भी वह उस सड़े-गले और घिनौने साथ को सदा-सदा के लिए नमस्कार कर देती है। अब वह सब कुछ सह सकती है; पुरुष के इस स्वार्थी स्वरूप को कदापि नहीं बर्दाश्त कर सकती। उसे तो ऐसे मित्र की तलाश थी जो उसका हमसफर साथी बनने योग्य होता। कृति में वसुधा की हमसफर की तलाश-वृत्ति पर भी प्रकाश पड़ता है। इसी तलाश के चक्कर में उसने राघवन पर कुछ ऐसा विश्वास कर लिया था कि अपनी कटि और त्रिवली पर उसके हाथ फिराने से भी वह नहीं बिदकती। अपनी वैवाहिक असफलता का खालीपन

उस पर कुछ इस कदर हावी रहता है कि वह राघवन के हाथ को अतुल का हाथ ही समझती है या दूसरे अवसर पर अपने भीतर एक ऐसा ठण्डापन महसूस करती है जो विरक्ति की सीमा छूने लगता है। इसी दौरान वह अपनी सहेली शालिनी के माध्यम से उसके मित्र एन्ड्रज के दोस्त सुभाष से मिलती है। सुभाष में भी उसका आकर्षण बढ़ता है क्योंकि वह हम उम्र है, आकर्षक है और खुले व्यवहार वाला है। विज्ञापन से जुड़ा अशोक उसे अपने योग्य लगने लगता है। परिणामस्वरूप पसरीचा से उसका मिलने-जुलने का सिलसिला तो जहाँ था, वहीं रहा; पर इसी बीच सुभाष ने उसके द्वन्द्व को और बढ़ा दिया।किन्तु अपने लिए पसरीचा और सुभाष के बीच चयन का द्वन्द्व की कुछ और आगे बढ़ता कि शालिनी ने उसका पटाक्षेप कर दिया। विज्ञापन जगत से जुड़े सुभाष की मीठी-खुली बातों का अर्थ शालिनी जानती थी और नहीं चाहती थी कि अतुल के साथ हुई वसुधा की ट्रेजडी फिर से दुहराई जाय। अन्यथा पुरुष-ज्वर से पीड़ित संवेदनशील वसुधा तो गच्चा खा ही जाती।

फिर तो विकल्प बस एक ही बचा था कि पसरीचा के साल भर से प्रस्तावित प्रेमबांह के आमन्त्रण को वसुधा स्वीकार कर ले। कारण, जो उसे चाहिए था, वह सब कुछ पसरीचा के व्यक्तित्व और कृतित्व में विद्यमान था। व्यावहारिक बौद्धिक जीवन की प्रतीक शालिनी जैसी शुभेच्छु सहेली ने भी उसे तसदीक कर दिया था। खतोखितावत हुई और वसुधा ने उस अवसर पर आत्मविश्वास दिखाते हुए उनका हाथ थामा जब उन्हें उसकी आवश्यकता थी। गहरे प्रेम का यह करुणापूर्ण अन्त कहीं न कहीं इस तथ्य को रेखांकित करता है कि करुणा के उद्रेक के बिना प्रेम शारीरिक क्षुधा से आगे नहीं बढ़ पाता। यह करुणा लेखक की मानवीयता का परिचायक है।

दरअसल उपन्यास का कथ्य बस इतना ही है कि वसुधा और पसरीचा के आन्तरिक द्वन्द्व को अन्ततः एक ऐसी परिणति पर पहुँचाया गया है, जो भले ही चौकाने वाली अथवा विशिष्ट परिणति न भी हो, पर बम्बई जैसे महानगर के आधुनिक जीवन में जुड़े यथार्थ से यह कहीं बाहर पड़ती हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जीवन साथी के प्रति कुछ-कुछ अपेक्षाएँ रखकर वैवाहिक सम्बन्ध को स्वीकार करने वालों की अपेक्षाएँ जब भंग होती हैं, तो उनका मनोविज्ञान, अतीत की स्मृतियों में कुछ ज्यादा ही खोया रहता है। वसुधा और पसरीचा दोनों की मानसिकता इसका प्रमाण है। हाँ, उनकी प्रतिक्रियाओं में अन्तर है, जो उनकी स्थिति सैक्स, वय आदि के साथ उनकी अपेक्षाओं की गुणात्मकता पर भी आधारित है। जहाँ वसुधा को पुरुष और विवाह-सम्बन्ध से ही अरुचि हो जाती है, वहीं पसरीचा को अपनी अतीत की आतुरता पर तो कोफ्त होती है, पर नारी के प्रति उनके मन में अरुचि और घृणा नहीं उपजती। बताने की आवश्यकता नहीं कि इसी विश्वास के बल पर वे वसुधा के मन की झिझक को दूर करने में सफल होते हैं कि कहीं न कहीं उसके और अतुल के सम्बन्धों में भी जो कमी रह गयी थी, उसके मूल में

पर-निर्भरता की आतुर स्वीकृति ही मुख्य कारक है। इसीलिए वे उसे पर्याप्त अवसर देते हैं कि वह आत्म-निर्णय लेने में सफल हो सके। और, इसका परिणाम सुखद ही रहा दोनों की दृष्टि से।

वैवाहिक सम्बन्ध की नींव परस्पर विश्वास होता है जिसको बनाए रखने के लिए एक दूसरे की स्वतन्त्रता और सहमति की जरूरत होती है। कतिपय अपेक्षाओं की पूर्ति भर करने के लिए एक दूसरे का इस्तेमाल करने का सामाजिक अधिकार विवाह संस्था के लिए कितना घातक है, इसे शहरी मध्य-वर्ग की आकांक्षाओं भरी जिन्दगी में देखना कठिन नहीं। उपन्यासकार ने इस सहज फिलॉसफी को ही रूपायित किया है। उसकी सफलता इस बात में नहीं है कि वह सहज और सामान्य वैवाहिक जीवन के कुछ सूत्रों को जोड़ने का प्रयत्न करता है, बल्कि इस बात में है कि वह सहज कथ्य को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत करता है।

उपन्यास का कथा-क्षेत्र बम्बई है और कथाकाल सन् 1990–91 का है। एक सौ तिरपन पृष्ठों के उपन्यास की माला विभिन्न शीर्षकों—परिचय–1, परिचय–2, नये मोड़ पर, उपकार की ओट में, अतीत के झरोखे, नए परिचय की मुस्कान, शब्दों के आइने में, अन्तर्द्वन्द्व के दायरे, आधार का असमंजस, अनिश्चित निर्णय की ओर, बढ़ते हुए तनाव के बीच, विश्वास की उजास में अप्रत्याशित घेरों के बीच, आश्वस्ति की साँस और अन्तिम पड़ाव 'अन्ततः' से पूरी होती है जोकि इस कृति का शीर्षक भी है। इसे हम लेखक का बुद्धि चातुर्य ही कह सकते है। शीर्षक का भी अपना विशेष महत्व होता है क्योंकि सम्पूर्ण कथ्य इसके आस-पास ही घूमता है। देवेश ठाकुर ने इसका बड़ी कुशलता से निर्वाह किया है। शीर्षकों में विभाजित होने के कारण उपन्यास की रोचकता बढ़ी है। इससे उपन्यास की कथा में किसी प्रकार का उलझाव भी नहीं आता। शुरू में लेकर अन्त तक पाठक की उत्सुकता बनी रहती है। कथानक मध्यवर्गीय आम जीवन से सम्बद्ध होने के कारण भी अधिक रुचिकर लगता है।

उपन्यास की नायिका अस्थिर और असंतुलित चरित्र वाली महिला है। पति के विदेश-गमन के बाद राघवन, पंकज पसरीचा और सुभाष के प्रति मन से या मजबूरी में आकर्षित होना ही उसके अस्थिर चरित्र का लक्षण है। अर्थाभाव न होने पर और एक बच्चे की माँ होते हुए भी वह किस मजबूरी में राघवन को अपनी अस्मिता से खिलवाड़ करने देती है, इसका उल्लेख उपन्यास में नहीं है। इस बात का संकेत जरूर किया गया है कि अतुल के जाने के बाद राघवन ने उसकी बहुत सहायता की, लेकिन इसका विवरण नहीं है। अतुल के साथ अपने प्रेम-प्रसंगों की यादों को समेटे हुए भी वसुधा स्वयं से प्रणय के प्रति अधिक जागरूक दीखती है। उसे अपने पुत्र अविनाश के भविष्य और उसके सुख-दुःख की चिन्ता नहीं है। 'अन्तर्द्वन्द्व के दायरे' शीर्षक में वह अपने अवचेतन मन में पंकज पसरीचा से बातें करती हुई कहती है—कि 'मेरी मजबूरी और परिस्थिति दूसरे संदर्भों में हो सकती है। सामाजिक

और व्यक्तिगत संदर्भों में। लेकिन समर्पण का सम्बन्ध तो मन से होता है·····। और मन में ·····। ठीक है, वहाँ कभी अतुल का लेकिन अब कोई नहीं है।····· (पृष्ठ 97)।

शारीरिक रूप से वसुधा राघवन के प्रति समर्पित हो चुकी है। मन भी तो आखिर शरीर में ही होता है। इसका उल्लेख लेखक ने 'उपकार की ओट में' शीर्षक में किया है। दोनों पिक्चर हॉल में बैठे हैं—

'राघवन का पूरा शरीर झनझना रहा है।
उसकी अंगुलियाँ वसुधा के बालों में उलझी हैं।
वसुधा जड़ है।
अब जंघाएँ सहलाई जा रही हैं।
अब कटि की त्रिवली पर राघवन का हाथ रुक गया है।
अब राघवन कटि के ऊपर कुछ टटोल रहा।
वसुधा को कुछ-कुछ होने लगा है।
उसकी देह में उष्णता भरने लगी है।
उसने अपना सर राघवन के कन्धों पर लटका दिया है।'

उपर्युक्त प्रसंग से उपन्यास में अश्लील भावों की रूमानियत का आग्रह तनिक अधिक है, अन्यथा सादगी का निर्वाह हुआ है। इसे हम राघवन के प्रति शारीरिक और मानसिक रूप से वसुधा का समर्पण (भले ही विवशता में सही) नहीं कहेंगे तो भला और क्या कह सकते हैं? अवचेतन मन में अतुल की यादों को समेटे तथा मानसिक रूप से पंकज पसरीचा की ओर आकर्षित और राघवन के प्रति शारीरिक रूप से समर्पित होते हुए भी वसुधा अपनी सहेली के मित्र एन्ड्रूज के मित्र सुभाष के प्रति भी आकर्षित हो जाती है। इसे वसुधा के चरित्र की अस्थिरता भी कहा जा सकता है। क्या आज की पढ़ी-लिखी मध्यवर्गीय नारी की यही स्थिति है? यह एक विचारणीय मुद्दा है।

वसुधा पंकज पसरीचा के विचारों और भावनाओं की कद्र करती है और उनकी मित्र बनने के प्रस्ताव पर भी विचार करती है। इस विचार मंथन में लगभग एक वर्ष लगता है। लेकिन फिर भी वह निर्णय नहीं ले पाता। 'अन्तर्द्वन्द्व के दायरे' में उपन्यासकार ने उसके अन्तर्मन की व्यथा को व्यक्त किया है—'पद का दायरा। उम्र का दायरा, परिस्थिति का दायरा। संस्कारों का दायरा। स्टेटस का दायरा। समाज का दायरा। कितने दायरों के बीच आदमी फंसा-रुका हुआ होता है। इन सारे दायरों को तोड़ा जा सकता है क्या? और फिर·····। इन दायरों को तोड़कर क्या मिलेगा। एक प्रौढ़ व्यक्ति का साथ·····। एक वृद्ध साहचर्य। (पृष्ठ 95)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूरे उपन्यास में वसुधा अन्तर्द्वन्द्वों से ग्रस्त हैं और

उसके चरित्र में बिखराव ही दिखाई देता है। इन बिखरावों में भी शुरू से अन्त तक वह पंकज पसरीचा के प्रति समर्पित दीखती है और अन्ततः उनका सहारा न चाहते हुए भी स्वयं उनका सहारा बनकर पंकज का हाथ थाम लेती है। यहाँ उसकी मानसिक परिपक्वता का परिचय मिलता है। यही उसके चरित्र का वैशिष्ट्य है। समाज में पता नहीं कितनी वसुधाएँ चाहते हुए और न चाहते हुए भी इस प्रकार के बंधन में बँध रही हैं। लेखक ने इसे बड़ी सफलता के साथ अंजाम दिया है।

उपन्यास का दूसरा चरित्र मिस्टर पंकज पसरीचा का है। जोकि 'इन्दिरा एक्सप्रेस' के संपादक हैं। वे गम्भीर, शान्त स्वभावी और संपादन-कार्य में दक्ष हैं। पद्मा से अनबन होने के बाद उनको लत ड्रिंक्स और सिगार के प्रति हो जाती है। पन्द्रह वर्ष के बाद भी वे अपने और पद्मा के प्रेम सम्बन्धों को भूल नहीं पाये हैं। पद्मा को बहुत प्यार किया था उन्होंने। शादी के कुछ दिन बाद ही वह पार्टी और क्लब में इतनी व्यस्त हो गई कि उसका आचरण पंकज पसरीचा के लिये असह्य और नारकीय बन गया। इसके बाद भी पंकज उसे छोड़ने की पहल स्वयं नहीं करते। 'स्मृतियाँ' शीर्षक में लेखक ने उनके विचारों को इस प्रकार दर्शाया है—'पंकज के लिये पद्मा का सौन्दर्य कीचड़ बन गया था। ऐसा कीचड़, जिसमें कमल नहीं खिलते, कीड़े रेंगते हैं। जिसको एक दिन उन्होंने अपने मन-प्राणों से भी ज्यादा चाहा था; उसे ही वे अपने गले की फाँस महसूस करने लगे थे। लेकिन इन सबके बावजूद अन्तिम निर्णय लेने की पहल वे नहीं करना चाहते थे।' (पृष्ठ 36)

उपर्युक्त कथन से पंकज के चरित्र की गम्भीरता और स्थिरता का पता लगता है। आज के युग में हमारे समाज में कितने ही लोग पंकज पसरीचा और वसुधा की तरह अन्तर्द्वन्द्वों और उलझनों भरा वैवाहिक जीवन जी रहे हैं। लेखक का संकेत इस बात की ओर है कि प्रेम के नशे में ये लोग पारिवारिक उत्तरदायित्वों और निजी कर्त्तव्यों का निर्वाह समुचित रूप से नहीं कर पा रहे हैं।

सम्पूर्णता में भी अपूर्णता के बोध का एहसास पंकज पसरीचा को खाए जा रहा है। पद्मा के रिक्त स्थान की पूर्ति वह वसुधा से करना चाहते हैं। इसी खाली जगह को भरने के लिये ही एक दिन पंकज वसुधा के सामने मित्र बनने का प्रस्ताव बड़े शिष्टतापूर्वक रखते हैं—'मैं तुम्हारे अपने बीच औपचारिकता नहीं चाहता। और न ही कर्त्तव्य-भावना। मैं हार्दिकता चाहता हूँ। सहज, स्वाभाविक हार्दिकता···। और स्पष्टता। हमारी अच्छाई-बुराई, गलत-सही एक दूसरे के सम्मुख स्पष्ट हों। वहाँ न कोई बनावट हो, न दिखावा और न ही मजबूरी। और वसुधा, ऐसे रिश्ते न पति-पत्नी के हो सकते हैं; न औपचारिक मित्रों के। जिस रिश्ते की बात मैं कर रहा हूँ···उसे मैं कोई नाम नहीं दे सकता·····। उसे इससे ज्यादा समझाया भी नहीं जा सकता। लेकिन मुझे यकीन है कि तुम मेरी बात समझ गयी होगी।' (पृष्ठ 45)

कथन में जहाँ एक ओर पंकज के मन की, औपचारिक सम्बन्धों से उपजी अतीत की पीड़ा है वहीं एक नये प्रकार के औपचारिक सम्बन्ध का आग्रह भी है। साथ ही मन के खालीपन को भरने के लिये साथ की आवश्यकता का गहरा संकेत भी यहाँ ध्वनित हुए बिना नहीं रहता।

पंकज, वसुधा के अर्न्तमन को झाँककर अपने प्रस्ताव की याद दिलाते हैं—'मन की निकटता को न पहचानता होता तो तुमसे यह सब कहने का साहस कर पाता क्या ? देखो वसुधा, मन की निकटता ही मूल बात है। यही निकटता स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों में एक बिन्दु पर आकर शरीर की निकटता में बदल जाती है। शरीर मन से अलग कहाँ है पर ऐसे सम्बन्धों में शरीर तो गौण हो जाता है।' [पृष्ठ 126]

मनुष्य के आचार-विचार उसके संस्कारों पर निर्भर होते हैं। उसे चाहिये कि अपने रूढ़ संस्कारों से मुक्त होकर परम्पराओं का निर्वाह करते हुए नूतन विचारों को ग्रहण करे। आज की मध्यवर्गीय मानसिकता नये और पुराने विचारों के अन्तर्द्वन्द्व में जी रही है। इस स्थिति में उसके लिये समन्वित मार्ग की तलाश करना आवश्यक होगा। अन्यथा यह निश्चित है कि उसका जीवन भार स्वरूप होकर रह जायेगा।

तीसरा चरित्र राघवन का है। जो कि स्वार्थी, लोलुप और भ्रष्ट है जिसका प्रतिनिधित्व करने वाले लोग आज के समाज में काफी संख्या में मिलेंगे। पत्नी कल्याणी के होते हुए भी वसुधा के यौवन और धन का राघवन भरपूर फायदा उठाता है। आर्थिक लाभ के लिये कल्याणी भी अपने पति का साथ देती है। यद्यपि उसे राघवन और वसुधा के आन्तरिक सम्बन्धों के बारे में निश्चित रूप से कुछ मालूम नहीं है। वस्तुतः आज के युग में अर्थ इतना प्रधान हो गया है कि व्यक्तिगत नैतिक कमजोरियों को हम गौण समझने लगे हैं।

उपन्यास के अन्य पात्रों में प्रमुख रूप से शालिनी और सुभाष के चरित्र हैं। शालिनी आधुनिक विचारों में विश्वास करने वाली क्रांतिकारी महिला है। प्रेम के सम्बन्ध में लेखक ने शालिनी के माध्यम से बड़े अच्छे विचार व्यक्त किये हैं—जो कि हमारी परम्पराओं से हटकर आज के युग की माँग के अनुरूप हैं—

'प्यार की कोई जाति नहीं होती वसुधा। कोई धर्म नहीं होता। बस दो प्राण एक दूसरे को चाहते हैं। एक दूसरे की कद्र करते हैं। एक दूसरे के सुख-दुख का ध्यान रखते हैं। एक-दूसरे के प्रति उनमें विश्वास है। वे दोनों एक दूसरे में जज्ब हो जाते हैं—यही प्यार है। सामाजिकता को लेकर चलने वाला प्यार प्यार नहीं होता—समझौता होता है।

लेखक शालिनी के वक्तव्य द्वारा अन्तर्जातीय विवाह पर बल देता है। समाज में इसकी शुरुआत हो ही चुकी है। अगर इस प्रकार का बदलाव आया तो समाज में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा जिसकी तरफ लेखक अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता है। सुभाष भी आज की युवा पीढ़ी के नये विचारों का प्रतिनिधित्व करता है किन्तु उसके चरित्र में जीवन के प्रति ठोस मूल्यों का अभाव है।

उपन्यास की विशेषता इस बात में भी है कि लेखक ने उपन्यास की कथा को समाचार पत्रों में प्रकाशित घटनाओं से जोड़कर उन्हें अधिक जीवन्त बना दिया है। कृति के आरम्भ में ही समसामयिक घटनाओं का एक खाका प्रस्तुत कर दिया गया है। प्रेस क्लब में उपस्थित पत्रकारों की छोटी-छोटी टोलियाँ बैठी हैं। उनकी बात-चीत के माध्यम से समसामयिक वातावरण साकार किया गया है।

"बहस। मजाक। व्यंग्य। गंभीर चर्चा।
राजनीति। औरतें। स्ट्राइक। सरकार।
रूस। अमरीका। पाकिस्तान। लंका। पंजाब।
आतंकवादी। विश्व हिन्दू परिषद। शिवसेना।
कोलाबा की कॉल-गर्ल्स। धारावी के स्लम्स।
जसलोक। बीच कैंडी।" (पृष्ठ 8)

उपर्युक्त सूची इस बात का संकेत देती है कि लेखक अपने परिवेश के प्रति कितना सतर्क है। उपन्यास में समकालीन समस्याओं और विसंगतियों का भी चित्रण हुआ है जो यथार्थ के बहुत निकट हैं। लेखक प्रेम-सम्बन्धों का जायजा लेते हुए भी समकालीन समस्याओं और बोध के प्रति सजग है। इसी सन्दर्भ में अमरीका और इराक के बीच युद्ध का उल्लेख व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है। सुभाष वसुधा से प्रश्न करता है—

"—आपका क्या ख्याल है, अमरीका इराक से लड़ाई छेड़ेगा।'
—लड़ाई छेड़ने के लिये ही तो उसने इराक को छेड़ा है।' वसुधा।
—मतलब ?'
—मतलब साफ है। अमरीका अपनी इकॉनामी दुरुस्त करना चाहता है। इसके लिये उसके हथियार बिकने चाहिए। और लड़ाई होगी तो हथियार बिकेंगे।" (पृष्ठ 76)

इस वार्तालाप की अहमियत यह है कि यह दो प्रेमियों की वार्ता के बीच उभरता है। यह इस बात का संकेतक है कि लेखक बराबर देशकाल की घटनाओं से जुड़ा रहा है। अन्य समकालीन स्थितियों, विसंगतियों की चर्चा भी लेखक ने अन्यत्र अनेक स्थलों पर की है।

पंकज पसरीचा के द्वारा लेखक ने कुशल एवं सक्षम संपादक के गौरव और गरिमा का निर्वाह करवाया है। पसरीजा वसुधा से कहते हैं—

—'पत्रकार की जिन्दगी साधना की जिन्दगी होती है। उसके काम करने का कोई समय नहीं होता।' (पृष्ठ 70)

ये विचार लेखक की कार्य के प्रति निष्ठा और ईमानदारी के संकेत देते हैं। चाहे वह पत्रकारिता का कार्य हो या अन्य और कोई कार्य। इन्सान में हिम्मत होनी चाहिये। और होनी चाहिये एक साफ-सुथरी दृढ़ इच्छा-शक्ति।

आलोच्य कृति को पढ़ने पर यह तथ्य स्थापित होता है कि स्वच्छन्द प्रेम सम्बन्धों की सम्बन्ध कथा है। पंकज पसरीचा के विचारों में नैतिक आदर्शों की झलक मिलती है। अन्य पात्र अस्थिर बुद्धि वाले दीखते हैं। कथा का केन्द्र बम्बई महानगर है। इस कारण इसमें भव्य इमारतों, होटलों और समुद्र का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। उपन्यास पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि हम भी बम्बई की सड़कों पर बह रहे हैं।

इसी क्रम में प्रस्तुत उपन्यास की भाषा-शैली पर कतिपय अन्य बातें भी विचारणीय हैं। उपन्यास की भाषा बहुत सरल, सहज और बोधगम्य है। तत्सम्, तद्भव और उर्दू शब्दों के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग यहाँ भरपूर हुआ है। कहीं-कहीं तो पूरा वाक्य ही अंग्रेजी का मिलता है। सामसिक शब्दों का प्रयोग कम हुआ है। प्रश्नोत्तर शैली के प्रयोग के कारण वाक्य छोटे-छोटे होते हैं। वर्णनात्मकता का अभाव है जिसके कारण संवाद में सरसता और कौतूहल बना रहता है। एक विशिष्ट बात यह है कि उपन्यास का मंचन भी आसानी से किया जा सकता है। इसमें नाटकीयता के विशेष गुण विद्यमान हैं। पूरी कृति भाषा-शिल्प और भाव की गरिमा को बनाये रखने में सक्षम है। उदाहरण स्वरूप पृष्ठ 127 पर—'प्यार और वासना में अन्तर होता है। वासना के कीचड़ में मैं कभी नहीं फँसा। मेरे संस्कार ही ऐसे नहीं हैं। और प्यार, प्यार प्यार मेरे लिये एक निष्ठा है, पूजा है, सही सम्बन्ध है और यह सब नितान्त व्यक्तिगत है। और मैं कहूँ, मैंने तुम्हें प्यार किया है। तुम कोई भी निर्णय लो, उससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक मैं हूँ, मेरे साथ मेरी भावनाओं में तुम भी हो, तुम भी रहोगी।'

भाषा-प्रयोग और संवाद—पात्रों के अनुकूल है। नौकर की भाषा और पंकज पसरीचा की भाषा में अन्तर है। नौकर दानसिंह 'साहब' के स्थान पर 'जी साब' का प्रयोग करता है। मिस्टर पंकज जब बात करते हैं तो भाषा का रूप बहुत ही परिमार्जित और प्रांजल मिलता है। राघवन और सुभाष की भाषा और शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप हल्के स्तर की है। वसुधा की भाषा और शैली में भी निखार और प्रांजलता दीखती है।

लेखक द्वारा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है। इससे भाषा के प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न हुआ है। यहाँ हम लेखक की मजबूरी भी लक्षित कर सकते हैं क्योंकि आधुनिक विचारों के प्रभाव के कारण और वहाँ उसकी आवश्यकता को महसूस करके ही लेखक ने अंग्रेजी शब्दों का इस्तेमाल किया है। आजकल पढ़े-लिखे लोगों के बीच वार्तालाप में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग एक फैशन-सा हो गया है। जिसका प्रमाण आजकल के बुद्धिजीवी मध्यवर्गीय जीवन में अक्सर मिलता है। साथ ही, निजी अनुभवों और कल्पना का सहारा लेते हुए लेखक

ने आज के मध्यवर्गीय जीवन और नारी-जीवन का यथार्थ चित्रण करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

व्यापक जीवन अनुभवों से अनुप्राणित मानवीय संवेदनाओं को विस्तार देते हुए तथा समसामयिक एवं सामाजिक यथार्थ का चित्रण करते हुए एक जीवन्त रचना प्रस्तुत करना वास्तव में लेखक की सामर्थ्य और उसकी वस्तुपरक दृष्टि का प्रमाण है। कहना न होगा कि देवेश ठाकुर ने मध्यवर्गीय महानगरीय जीवन को खूब गहराई से जाना, समझा और जिया है। इसीलिये 'अन्ततः' समसामयिक जीवन और समाज की प्रस्तुति के सन्दर्भ में एक सफल और सार्थक कृति बन पड़ी है।